कार्ल मार्क्स
(KARL MARX)

कार्ल हेनरी मार्क्स एक प्रमुख दार्शनिक, विद्वान, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, राजनैतिक वैज्ञानिक, इतिहासकार, समाजवाद का प्रणेता इत्यादि के नाम से जाना जाता है। यह अपने आप में एक व्यक्ति नहीं एक संस्था है। मार्क्स एक पक्का तर्कवादी चिन्तक था, उसका कहना था कि वह समाज जो कुछ उपलब्धियाँ करना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे अपने सभी भ्रम या भाषा को त्याग देना होगा। इसी मुहावरे को मार्क्स ने अपने जीवन पर लागू किया। ऐसे महान विचारक का जन्म 5 मई सन् 1818 में जर्मनी के प्रशिया के राईन प्रान्त के त्रियर कस्बे में यहूदी परिवार में हुआ था। मार्क्स के पिता हरसल मार्क्स के 9 सन्तान थी, जिनमें कार्ल मार्क्स ज्येष्ठ था, मार्क्स के पिता ने 1824 में ही यहूदी धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। मार्क्स का बाल्यकाल बहुत सुखमय, निश्चिन्तता में व्यतीत हुआ। मार्क्स के पिता पुरोहित का व्यवसाय छोड़कर त्रियर नगर में अच्छे वकील बने। मार्क्स की माता अधिक शिक्षित नहीं थी। ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने के बाद मार्क्स के पिता से मार्क्स को वैचारिक प्रगति में अत्यन्त सहायता रही। मार्क्स की प्रारम्भिक शिक्षा त्रियर के एक स्थानीय स्कूल में प्राप्त हुई। मार्क्स बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के स्कूल छात्र थे, उन्होंने स्कूली जीवन में एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने 'व्यवसाय चुनने के सम्बन्ध में एक तरूण के विचार' के नाम से तैयार किया, जिसे अत्यन्त ख्याति प्राप्त हुई।

कानून की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मार्क्स को बोन विश्वद्यालय में प्रवेश दिलाया, लेकिन वहाँ मार्क्स अधिक सफल नहीं हो पाए। सन् 1836 में बर्लिन विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं कानून का अध्ययन करने के लिए भेजा। ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि मार्क्स को जेनी के लायक बनाना था, जो एक धनी परिवार की पुत्री थी और मार्क्स जिससे प्रेम करता था। वहाँ मार्क्स की रूचि दर्शन व इतिहास में बढ़ती गई व कानून के प्रति रूचि कम होने लगी। सन् 1838 में मार्क्स के पिता की मृत्यु हो गई। बर्लिन विश्वविद्यालय में ही उस समय के प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल के विचारों का मार्क्स पर प्रभाव पड़ा और उन्होंने यंग हीगेलियन नामक संस्था की सदस्यता ग्रहण कर ली। 1841 में जेना विश्वविद्यालय से 'डेमोक्रेटिक और एपिक्यूरस के दर्शन का भेद' नामक शीर्षक पर उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। 1842 में वे बोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर न बनने पर 'राइनिश जाइटुंग' नामक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया और इसके द्वारा मार्क्स ने पूरे जर्मनी में राजनैतिक व धार्मिक उत्पीड़न के विरूद्ध आम जनता के पक्ष में आवाज उठाई। वे बार-बार इस बात का अनुभव करते रहे कि प्रशिया की स्थानीय सरकार व अधिकारी जनता के विरूद्ध निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते हैं व वे उनके हितों की रक्षा करने में असमर्थ हैं। अपने इन्हीं उग्र विचारों के कारण 1843 में मार्क्स को सम्पादन के पद से इस्तीफा देना पड़ा और वे यहाँ से पेरिस चले गए।

इसके पूर्व मार्क्स जब बोन विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, उसी समय उनका सम्पर्क जेनी वॉन वेस्टफालेन नामक लड़की से हुआ व मार्क्स ने उसी से 19 जून 1843 को विवाह कर लिया। जेनी का जन्म प्रशिया के एक अभिजात परिवार में हुआ, फिर भी उससे बढ़कर समानता की भावना कभी किसी में नहीं रही, वे अपने घर में और कार्यस्थल पर सभी से विनम्रता व शिष्टता से पेश आती और मेहमानबाजी में उसे सुख की प्राप्ति होती। जेनी से कई बच्चे पैदा हुए, उनमें एक पुत्र एडगर व दो पुत्रियां

Scanned with CamScanner

फाक्स व फ्रांसिस्का का छोटी उम्र में ही पारिवारिक कठिनाईयों के कारण मृत्यु हो गई। जीवित सन्तानों में 3 पुत्रियां जेनी, एल्यूनोरा और लोरा थी, जिन्हें मार्क्स अत्यन्त प्रेम देता। मार्क्स के बच्चे बहुत आज्ञाकारी थे, पत्नी और बच्चे मार्क्स की हर सम्भव सहायता की कोशिश करते चाहे, वह पारिवारिक कार्य हो या साहित्यिक।

सन् 1844 में जब मार्क्स पेरिस आए, तब उनका सम्पर्क अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों से हुआ। पेरिस में ही मार्क्स आदर्श साम्यवादी केबेट, दार्शनिक अराजकतावादी प्रार्थों, साम्यवादी अराजकतावादी बाकुलीन तथा सबसे महत्वपूर्ण अपने आजीवन साथी फ्रेडरिक एन्जिल्स से मिले, मार्क्स व एन्जिल्स की मित्रता अटूट व अनूठी थी, इनकी मित्रता के सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा कि प्राचीन काल की कथाओं से हमें मित्रता के बहुत से हृदयात्मक उदाहरण मिले हैं, लेकिन यूरोप का सर्वहारा वर्ग यह दावा करता है कि उसके विज्ञान की रचना ऐसे दो अध्येताओं व योद्धाओं ने की, जिनकी परस्पर मैत्री के सम्बन्ध प्राचीन समय की मानवीय मित्रता की सबसे हृदय द्रावक कहानियों को भी फीका बना देते हैं।

सन् 1844 में मार्क्स को बुनकरों के विद्रोह का समर्थन करने के कारण प्रशिया की सरकार ने उन्हें फ्रांस की सरकार पर दबाव डालकर देश निकाला देने पर मजबूर किया। तब मार्क्स 1845 के आरम्भ में फ्रांस से ब्रुसेल्स आकर रहने लगे। यही मार्क्स ने अपने मित्र के साथ मिलकर 'होली फेमिली' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। मार्क्स के क्रान्तिकारी भौतिक दर्शन और सर्वहारा-वर्ग की सैद्धान्तिक विचारधारा के तत्व इस पुस्तक में प्रस्फुटित होने लगे। 1847 में जब कम्युनिस्ट लीग की दूसरी कांग्रेस की तैयारियाँ होने लगी तब मार्क्स व एन्जिल्स को कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र को तैयार करने का काम सौंपा। जिसे फरवरी 1848 में लन्दन से प्रकाशित किया, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र मार्क्स, की अमर रचना व वैज्ञानिक कम्युनिज्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसी घोषणा पत्र में उन्होंने बताने का प्रयास किया कि सर्वहारा वर्ग की क्रांति के फलस्वरूप पूँजीवाद का विनाश होता है व उसके स्थान पर एक नए वर्ग विहीन समाज की स्थापना अनिवार्य रूप से एक ऐतिहासिक शर्त है।

1848 से 1850 के बीच मार्क्स ने फ्रांस में 'वर्ग संघर्ष' नामक अपनी कृति में सर्वहारा वर्ग के पक्ष में बहुत कुछ लिखा। 1851 से 1862 तक मार्क्स ने अपना अधिकतर समय 'न्यूर्याक डेली ट्रिब्यून' नामक पत्र में लगाया, 1855 में मार्क्स के एक मात्र नौ वर्षीय पुत्र की मृत्यु ने मार्क्स की हिम्मत तोड़ दी, फिर भी मार्क्स ने 1859 में 'ए क्रीटिकल पॉलिटिकल इकॉनोमी' नामक रचना तैयार की। 1866 के आसपास केपीटल के लिए संग्रहित सामग्री को मार्क्स ने पुस्तक का रूप देना प्रारम्भ किया, जिसे 1867 में दास केपीटल का प्रथम खण्ड मार्क्स द्वारा प्रकाशित किया गया, इस ग्रन्थ से मार्क्स के विद्वता की धाक पूरे विश्व में जम गई। यह ग्रन्थ अमर कृति बन गया। इसको प्रारम्भ में जर्मन भाषा में ही लिखा व प्रकाशित किया इस ग्रन्थ का दूसरा व तीसरा भाग मार्क्स के जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो पाया, परन्तु मार्क्स के मित्र एन्जिल्स ने क्रमशः 1885 व 1894 में प्रकाशित किया। यह साम्यवादियों का बाईबिल माना जाता है। मार्क्स के दास केपिटल के सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा कि यह ग्रन्थ ही वह मुख्य और बुनियादी रचना है, जिसमें वैज्ञानिक समाजवाद की व्याख्या की गई है। इस ग्रन्थ में सर्वहारा वर्ग के साम्राज्यवाद सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक सिद्धांत, सत्तावादी व सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तत्व को गहन दार्शनिक तथा अर्थशास्त्रीय ढंग से समझाया गया है। ई. स्तेपानोवा ने भी लिखा है "मार्क्स की यह महान् रचना पूँजीवादी गुलामी के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग संघर्ष में उसका एक शक्तिशाली सैद्धान्तिक अस्त्र है।"[1] दुर्भाग्यवश मार्क्स को आजीवन निर्धानता का सामना करना पड़ा। 2 दिसम्बर 1881 को जब जेनी का निधन हो गया, तो मार्क्स टूट गया। मार्क्स का स्वास्थ्य पहले से अच्छा नहीं था, पर जेनी की मृत्यु के बाद स्थिति और खराब होने लगी, बीमारी में मानसिक कष्ट तब और बढ़ गया जब उन्हें अपनी सबसे बड़ी पुत्री जेना की मृत्यु का समाचार मिला। फेफड़े की सूजन व पुरानी खांसी की चिकित्सा के लिए वे अल्जीरिया और दक्षिणी फ्रांस भी गए, पर वहाँ कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। उनकी हालत तेजी से बिगड़ती गई व 12 मार्च सन् 1883 को तीसरे प्रहर पौने तीन

बजे संसार के सबसे महान् विचारक की चिन्तन क्रिया बन्द हो गई। वे आराम कुर्सी पर सोए हुए थे, परन्तु सदा के लिए सो गए। उनकी मृत्यु भी दुखद घटना से उनके मित्र एन्जिल्स ने मार्क्स के मित्र व अनुयायियों को एक पत्र लिखते हुए बताया कि "हमारी पार्टी के सबसे महान् मस्तिष्क ने सोचना बंद कर दिया है, आज एक ऐसे दृढतम हृदय ने धड़कना बंद कर दिया है, जैसा मैंने पहले कभी देखा-सुना नहीं था।" 17 मार्च 1883 को शनिवार के दिन लंदन के हाइगेट नामक कब्रिस्तान में दफनायाा। यह जगह एक पहाड़ी पर स्थित है, जहाँ से पूरे विराट नगर की झाँकी मिलती है। कब्रिस्तान में उनकी समाधि के पास एन्जिल्स द्वारा पढ़े गए शव सन्देश की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार थी "जीवन में उनका उद्देश्य प्रत्येक सम्भव तरीके से पूँजीवादी समाज के अन्त का प्रयत्न करना था..... संघर्ष उनके जीवन का मुख्य तत्व था और उसने ऐसे अदम्य उत्साह, साहस व सफलता से संघर्ष किया, जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, परिणामतः वह अपने समय का सबसे अधिक घृणा व श्रद्धा का पात्र व्यक्ति था, उनका नाम व कार्य युग-युग तक जीवित रहेगा।"

मार्क्स की मृत्यु पर उनकी पुत्री तुस्सी ने लिखा है "हम सामाजिक जनवादी पीर-पैगम्बर नहीं मानते और उनकी समाधियों का हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं है, लेकिन करोड़ों लोग ससम्मान उस व्यक्ति को याद करते हैं, जो उत्तरी लंदन के उस कब्रिस्तान में दफन है व हजारों वर्षों बाद, जब मजदूर वर्ग की आजादी की लड़ाई के रास्ते में आने वाली बर्बरता व तंगदिली अतीत की अविश्वसनीय कथाएं कही जाएगी, तब आजाद और कृतज्ञ लोग इस कब्रिस्तान के पास नंगे सिर खड़े होकर अपने बच्चों को कहेंगे-यहीं दफन है कार्ल मार्क्स।'

कार्ल मार्क्स का इस तरह अन्त हो गया, लेकिन वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापक एंव जन्मदाता मजदूरों मेहनतकशों एवं शोषितों के महान नेता की विचारधारा आज भी अपनी विशिष्टता के कारण अत्यन्त प्रतिष्ठा से याद की जाती है, मार्क्स का नाम शताब्दियों तक चलता रहेगा।

मार्क्स की प्रमुख कृतियां

मार्क्स ने अपने जीवन काल में अनेक प्रमुख पुस्तकों का प्रकाशन किया तथा पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया, जो प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं-

1. इकानॉमिक एण्ड पॉलिटिकल मैनुस्क्रिप्ट, 1843।
2. द होली फैमिली, 1845
3. द जर्मन आईडियॉलाजी; थीसिस ऑन फायरबाख, 1846
4. द पावर्टी ऑफ फिलॉसफी, 1847
5. कम्युनिस्ट मेनीफैस्टो, 1848
6. द क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस, 1850
7. द एटीन्थ ब्रयूमायर ऑफ लुइस बोनापार्ट, 1852
8. द कन्ट्रीब्यूसन टू द क्रिटीक ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी, 1859
9. दास केपिटल (खण्ड प्रथम), 1867
10. द सिविल वार इन फ्रांस, 1871
11. द क्रिटीक ऑफ गोथा प्रोग्राम, 1875
12. दास केपिटल (एन्जिल्स द्वारा, खण्ड द्वितीय), 1885
13. दास केपिटल (एन्जिल्स द्वारा, खण्ड तृतीय), 1894

एक समाजशास्त्री के रूप में मार्क्स ने निःसन्देह रूप से प्रमुख योगदान दिया है, वे सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अवलोकन एंव विश्लेषण पर जोर देते थे, जिस तरह डार्विन ने जीव जगत में उद्विकास के नियम का पता लगाया, उसी तरह मार्क्स ने मानव

Scanned with CamScanner

इतिहास में उद्‌विकास के नियम का पता लगाया। उन्होंने इस सच्चाई का पता लगाया जो अब तक विचाराधारणात्मक आवरण से ढंकी हुई थी। मार्क्स के विचारों के सम्बन्ध में हेनरी लिखते हैं "मार्क्स एक समाजशास्त्री नहीं है, लेकिन मार्क्स में समाजशास्त्र है।" मार्क्स अगस्त कॉम्ट की भाँति ही एक दार्शनिक व समाजशास्त्री दोनों थे, मार्क्स भी यही सोचते थे कि दर्शनशास्त्र व समाजशास्त्र एक सामान्य समग्र के ही अंग हैं। मार्क्स ने जिन विचारों को मूर्त रूप दिया, उनमें प्रमुख निम्न हैं-

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)

मार्क्स के विचारों में सबसे प्रमुख उनका विचार द्वंद्ववाद के सम्बन्ध में है, जिसे मार्क्स ने हीगल से ग्रहण किया। हीगल का यह विचार था कि विश्व का विकास संघर्ष एवं द्वंद्व से हुआ है। यह द्वंद्ववाद वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रिया द्वारा गुजरता है अर्थात् पहले कोई चीज होती है, जिसे वाद कहते हैं, फिर उस चीज के विरोध में तत्व विकसित होते हैं, जिसे प्रतिवाद कहते हैं। तत्पश्चात् इन दोनों के बीच संघर्ष होता है, जिससे एक नया रूप विकसित होता है, जिसे संवाद कहते हैं। यह संवाद आगे चल कर वाद बन जाता है, फिर उसके विपरीत प्रतिवाद बाद में प्रतिवाद व बाद में संघर्ष से संवाद की प्रक्रिया चलती रहती है, हीगल का द्वंद्ववाद आत्मा से सम्बन्धित था, मार्क्स ने हीगल के आत्मा के सिद्धांत को काल्पनिक और अवैज्ञानिक कह कर उसकी आलोचना की। लेकिन उन्होंने उनके द्वंद्वात्मक विकास की अवधारणा को ग्रहण किया। आत्मा को न हम देख सकते हैं, न छू सकते हैं, अतः यह कल्पना मात्र ही है। इस ठोस और दृश्यमान जगत को समाज के विकास को केवल काल्पनिक अलग-थलग विचार का द्वंद्वात्मक विकास नहीं कहा जा सकता। मार्क्स ने भौतिक द्वंद्ववाद को जन्म दिया व कहा कि पदार्थ विश्व का मूल है, सम्पूर्ण विश्व पदार्थ से ही बना हुआ है, पदार्थों में मतभेद और संघर्ष के कारण ही विश्व का विकास होता है। मार्क्स द्वंद्ववाद की प्रक्रिया द्वारा वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को न्याय संगत एंव स्वाभिक ठहराना चाहते थे।

'डायलेक्टिक' यूनानी शब्द 'डाइलेगों' से बना है, जिसका अर्थ वाद-विवाद करना था। यह युक्ति एवं तर्क के द्वारा विरोधी के तर्कों के विरोध को उजागर करने की कला थी। बाद में चिन्तन की इस द्वंद्वात्मक प्रणाली का प्रयोग गतिशील प्राकृतिक घटनाओं को समझने के लिए किया जाने लगा। हीगल ने द्वंद्ववाद का अपने प्रकार से उपयोग किया। हीगल के अनुसार प्रकृति व समाज का द्वंद्वात्मक विकास निरपेक्ष विचार से ही शासित रहता है।। मार्क्स ने हीगल के द्वंद्वात्मक आत्मावाद को तो अस्वीकार किया और अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का विकास किया। मार्क्स ने हीगल की प्रणाली को तो ग्रहण किया, किन्तु उसके आध्यात्मिक आधार को अस्वीकार कर दिया। हीगल के आत्मा तथा निरपेक्ष विचार के स्थान पर भौतिक जगत की सत्ता को स्वीकार किया। मार्क्स ने स्वयं अपने प्रमुख ग्रन्थ केपीटल की भूमिका में लिखा है "मैंने हीगल के द्वंद्ववाद को सिर्फ (मस्तिष्क, आत्मा) के बल पर खड़ा पाया, मैंने उसे पैरों के बल (पृथ्वी पर भौतिककता के आधार) पर खड़ा कर दिया। यदि आप रहस्यमय खोज में से तार्किक सार तत्व को छूट निकालना चाहते हैं तो आपको उसे (हीगल के द्वंद्ववाद) को बिल्कुल ही उलट देना होगा।"[2]

मार्क्स की द्वंद्ववादी पद्धति हीगल की पद्धति में मूलतः भिन्न ही नहीं, बल्कि उससे उल्टी भी है। मार्क्स के अनुसार हीगल के लिए मानव मस्तिष्क ही चिन्तन की प्रक्रिया, जिसे विचार के नाम से उन्होंने एक स्वतन्त्र कर्ता तक बना डाला है, वास्तविक संसार की सृजनकर्ता है और वास्तविक संसार विचार का बाहरी इन्द्रिय गाम्यरूप मात्र है, इसके विपरीत मेरे लिए विचार इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है, की भौतिक संसार ही मानव मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होता है व चिन्तन के रूपों में परिवर्तन हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मार्क्स का द्वंद्वात्मक दर्शन हीगल के द्वंद्व दर्शन के बिल्कुल विपरीत है। मार्क्स

का दर्शन हीगल के भाववादी तामझाम और रहस्यवाद से मुक्त होकर वैज्ञानिक भौतिकवादी पद्धति में बदल कर एक विचार धारणात्मक अस्त्र बन गया। हीगल के आकाश में लटकते निरपेक्ष विचार के स्थान पर अपनी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया का आधार मार्क्स भौतिक जगत को माना है। हीगल के लिए विचार प्रक्रिया जिसे वह विचार के रूप में एक स्वतन्त्र विषय वस्तु कहता है, इस विश्व का निर्माण करती है, जबकि विश्व विचार का बाह्य प्रत्यक्षीकरण मात्र है। इसके विपरीत मेरे विचार मानव मस्तिष्क द्वारा भौतिक विश्व के प्रतिबिम्बन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इस तरह मार्क्स का दर्शन इसलिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है, क्योंकि इसमें प्रकृति के घटना प्रवाह को समझने का तरीका द्वंद्ववादी है, चिन्तन का यह द्वंद्ववादी तरीका घटना प्रवाह पर लागू किया गया व विकसित होकर प्रकृति के विश्लेषण का तरीका बन गया। इसके अनुसार प्रकृति का घटना प्रवाह सदा गतिशील और परिवर्तनशील है, प्रकृति के अन्तर्विरोधी शक्तियों के बाद-प्रतिवाद के फलस्वरूप विकास होता है।

जर्मन दार्शनिक फायरबाख हीगल व मार्क्स के बीच की कड़ी है। 19वीं शताब्दी का शास्त्रीय जर्मन दर्शन विशेष रूप से हीगल व फायरबाख के दर्शन मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सैद्धान्तिक उद्‌गम स्त्रोत है व उसी से सम्बद्ध है, इसी दर्शन को लेकर मार्क्स ने अपने वैज्ञानिक द्वंद्ववाद की व्याख्या भौतिकवाद के आधार पर की। मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक प्रणाली के आधारभूत नियम-

मार्क्स के अनुसार जीवन व जगत् परम सत्य भौतिक है व आत्मा व ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। इनका विचार केवल कपोल काल्पनिक है, चेतना का आधार भौतिक है, बिना भौतिक के चेतना अस्तित्व में नहीं आ सकती, मार्क्स के अनुसार भाग्य व संगठित धर्म, शोषण व उत्पीड़न के हथियार हैं व भाववादी दर्शन ने उन्हें पुष्ट बनाया है।

(1) विपरीत तत्वों की एकता एवं संघर्ष का नियम-मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति अथवा ब्रह्माण्ड की वस्तुओं व घटनाओं का आकस्मिक संग्रह नहीं है, बल्कि प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से जुड़ा है व आपस में एक दूसरे पर निर्भर है। कोई भी चीज तब तक बनी रहती है, जब तक कि दूसरी चीज भी उसी रूप में बनी रहे, जैसे पानी तब तक पानी है जब तक आसपास के वातावरण में परिवर्तन नहीं हो। यदि तापक्रम में कमी हो जाती है, तो यह बर्फ व तापक्रम में वृद्धि होने पर भाप बनकर अवस्था में परिवर्तन ले आएगा। इससे यह स्पष्ट है कि संसार की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से सम्बन्धित एंव दूसरे पर निर्भर व एक दूसरे द्वारा निर्धारित है।

(2) गतिशीलता का नियम-द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता है कि प्रकृति एक स्थिर, गतिहीन, अपरिवर्तनशील और निरन्तर अवस्था नहीं है, बल्कि प्रकृति सतत् गतिशीलता, परिवर्तशीलता, नवीन विकास की दशा है। अर्थात् भौतिक पदार्थों को गतिशील मानते हैं तथा कहा है कि प्रकृति के प्रत्येक कण यहाँ तक कि रेत के सूक्ष्म कण से लेकर सूर्य पिण्ड तक सभी गतिशील है, उनमें परिवर्तन होते रहते हैं व प्रकृति के इस द्वंद्व के आधार पर पदार्थ विकास की ओर अग्रसर होते रहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संसार व प्रकृति में सब कुछ अस्थाई, गतिशील व परिवर्तनशील है।

(3) निषेध के निषेध का नियम-मार्क्स के अनुसार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में विकास की प्रक्रिया सरल व सीधी रेखा की भाँति नहीं होती, प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं, सकारात्मक एवं नकारात्मक, इन दोनों पक्षों में निरन्तर संघर्ष होता रहता है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु का विरोधी तत्व अवश्य होता है व इससे संवाद संभव होता है, इस प्रकार परिवर्तन दो विरोधियों के मध्य संघर्ष, पुराने और नए, आन्तरिक विरोध के फलस्वरूप होता है। इन दोनों का निरन्तर संघर्ष ही विकास का क्रम है।

(4) परिमाणात्मक का गुणात्मक परिवर्तन में रूपान्तरण-मार्क्स कहते हैं कि परिमाणात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन धीरे-धीरे या सरल तरीके से नहीं होता, बल्कि एकाएक हो जाता है और यह धीरे-धीरे होते

Scanned with CamScanner

रहने वाले संचय ही वास्तविक या स्वाभाविक देन है। यह परिवर्तन एक स्थिति से दूसरी में छलांग से होता है, तेजी से होने वाले परिवर्तन किसी चक्र में ही घूमने वाली गति की तरह नहीं होता, द्वंद्ववाद के अनुसार विकास की गति निरन्तर आगे बढ़ती हुई होती है, पुरानी गुणात्मक दशा से एक नई दिशा की ओर आगे बढ़ते रहना ही विकास का सिलसिला है। यह एक ऐसा विकास है, जो सरल से जटिल, निम्न से उच्च की ओर होता है।

भौतिक विज्ञान में प्रत्येक परिवर्तन परिमाण के गुण की ओर होता है व रसायन प्रक्रिया में भी परिमाण सम्बन्धी बनावट के परिवर्तन के फलस्वरूप परिवर्तन होता है। पानी का सामान्य तापक्रम उसकी स्थिति को प्रभावित नहीं करता, किन्तु जब उस तापक्रम के परिमाण को घटाया या बढ़ाया जाता तो पानी बर्फ या भाप में परिवर्तित हो जाता है, धीरे-धीरे या तेजी से घटने या बढ़ने वाले परिमाण के कारण बर्फ या भाप का गुणात्मक परिवर्तन होता है। इसी प्रकार समाज में बढ़तें विरोधी, बिगड़ती अर्थ व्यवस्था, सामाजिक परिस्थितियों व क्रान्तिकारी आन्दोलन आदि से समाज में क्रांतिकारी गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। एंजिल्स के अनुसार गति का यह स्वरूप या तो किसी वस्तु में निहित होता है अथवा बाहर से ग्रं दिया जाता है।

मार्क्स के दर्शन की विशेषता
(Characteristics of Marx's Philosophy)

कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को समझने के लिए उसकी दार्शनिक विवेचना में निहित मूल भावना को समझना जरूरी है। मार्क्स के लिए दर्शन कर्म प्रधान था, उसके विचार में दार्शनिक समस्याएं अस्पष्ट हवा में लटकते घुएं की तरह और मानवीय समाज की समस्याओं से पृथक् नहीं होती। वे किवदन्ति के उस दार्शनिक की भाँति नहीं थे, जो एक अन्धेरे कमरे में यह जानते हुए भी की बिल्ली वहाँ नहीं है, उसे ढूँढ़ने का प्रयास करे। मार्क्स ने उभरते पूँजीवाद की नृशंस कार्यवाही को गहरी बौद्धिक संवेदना से देखा तथा वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मानवीय जीवन का उद्देश्य संसार में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न तथा निर्धनता को नाश करने के पेने शस्त्र तैयार करना है। सन् 1845 में प्रकाशित उनकी पुस्तक में इस जग प्रसिद्ध और बहुचर्चित कथन से उनके दर्शन की मूल भावना स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने लिखा कि दार्शनिक ने विचित्र विधियों से विश्व की केवल व्याख्या ही की है, लेकिन प्रश्न तो विश्व को बदलने का है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मार्क्स को क्रान्तिकारी मार्क्स से पृथक नहीं किया जा सकता। मार्क्स के लिए दर्शन आवश्यक रूप से सामाजिक परिवर्तन के साथ सम्बन्धित है व बौद्धिक कसरत मात्र में ही है। हीगल व मार्क्स के दर्शन के सम्बन्ध में विवेचना करते हुए सेवास लिखते हैं कि दोनों व्यक्ति इतिहास के प्रवाह को तर्क सम्मत ढंग से आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि यह प्रवाह एक सुनिश्चित योजना के अनुसार सुसज्जित होता है व एक सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता है, मार्क्स के दर्शन में हीगल के दर्शन की अपेक्षा विकास के क्रम में हस्तक्षेप करने का भाव अधिक था, मार्क्स के दर्शन में कार्य करने की प्रेरणा भी थी।

मार्क्स के व्यक्तित्व की विवेचना करते हुए लेनिन लिखते हैं "जो कुछ मानव समाज द्वारा सृजित हुआ था, मार्क्स ने उसका नूतन संस्कार किया, उसकी आलोचना की व उसे मजदूर आन्दोलन की कसौटी पर कस कर ऐसे निष्कर्ष निकाले, जो पूँजीवादी संकीर्णता में जकड़े हुए या पूँजीवादी अंधविश्वास में डूबे हुए लोग नहीं निकाल सकते है।"

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स की इसी भावना के अनुरूप है। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स के मूल दार्शनिक सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का समाज के इतिहास व विकास क्रम पर लागू किया जाता है। प्रसिद्ध विद्वान क्रोबर लिखते हैं कि सामाजिक विज्ञान व दर्शन में मार्क्स की रूचि थी, मूलत: एक व्यवहारिक रूचि थी, उन्होंने ज्ञान को मानव की उन्नति को बढाने का एक साधन ही समझा है। मार्क्स के दर्शन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के इतिहास की गहरी विवेचना करके समाज को परिवर्तित करना था, मार्क्स एक व्यवहारिक दार्शनिक थे व उनके विचार में जो विचार समाज के लिए हितकारी न हो,

Scanned with CamScanner

कोरा कागजी बंधन, संसार के किसी भी काम न आने वाला हो, बेकार है, सिद्धान्त मानव की दशा सुधारने व उसके दुख को हल्का करने का साधन होना चाहिए। मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् उनकी समाधि पर

भाषण देते हुए एन्जिल्स ने कहा "जिस प्रकार डार्विन ने जैविक प्रकृति के विकास के नियम की खोज की, उसी प्रकार मार्क्स ने मानवीय इतिहास के विकास के नियम की खोज की। उन्होंने कहा था आलोचना का हथियार बेशक हथियारों द्वारा आलोचना का स्थान नहीं ले सकता।" भौतिक शक्ति को भौतिकवाद द्वारा ही उल्टा किया जाना चाहिए, पर जन समुदाय को आकर्षित करते ही भौतिक शक्ति बन जाती है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सारांश (Conclusion)

मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त अनेक कृतियों में बिखरा हुआ मिलता है, मार्क्स के इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में अवतरण व सेवाईन ने लिखा हैं कि "मनुष्य सामाजिक उत्पादन कार्यों के दौरान आपस में एक निश्चित प्रकार के सम्बन्ध कायम कर लेते हैं, इन सम्बन्धों के बिना उनका काम नहीं चल सकता। अत: वे अपरिहार्य व मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादनों के भौतिक तत्वों के विकास की विशिष्ट अवस्था के अनुरूप हुआ करते हैं। इन उत्पादनों के सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से ही समाज का आर्थिक ढांचा खड़ा होता है और वही असली नीव होता है, जिस पर विधायी व राजनैतिक व्यवस्थाओं का निर्माण होता है व इसी ढांचे के अनुरूप मनुष्यों की सामाजिक चेतना निश्चित रूप धारण करती है। भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति से ही जीवन की सामाजिक, राजनैतिक व आध्यात्मिक प्रक्रियोंओं का सामान्य रूप निर्धारित होता है। मनुष्यों का जीवन इनकी चेतना से निर्धारित न होकर उसके सामाजिक जीवन से उनकी चेतना का निर्माण होता है। समाज के विकास में एक ऐसी अवस्था आती हैं, जब उत्पादन के भौतिक तत्वों और तत्कालीन उत्पादन के सम्बन्धों में अर्थात् सम्पत्ति विषयक सम्बन्धों के बीच उत्पादन के सम्बन्धों में अर्थात् सम्पत्ति विषयक के बीच जिनके अन्तर्गत वे तत्व पहले से कार्यशील रहते आए हैं, संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। दूसरे शब्दों में ये सम्बन्ध उत्पादन के तत्वों के विकास में बाधा उत्पन्न करने लगते हैं, तब सामाजिक क्रान्ति का युग आरम्भ होता है। इस प्रकार आर्थिक नींव के बदलने से सम्पूर्ण व्यवस्था शीघ्र ही बदल जाती है। इस परिवर्तन पर विचार करते हुए उत्पादन की आर्थिक परिस्थिति का भौतिक परिवर्तन, जो प्राकृतिक विज्ञान की शुद्धता के साथ निर्धारित हो सकता हैं, विधायी, राजनैतिक, धार्मिक, सौन्दर्य सम्बन्धी व दार्शनिक रूपों के परिवर्तन के बीच सदैव ही भेद रखना चाहिए, जिसमें आदमी इस संघर्ष को समझने लगता है व उनसे संघर्ष करता है..... किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कोई सामाजिक व्यवस्था तक तक विलुप्त नहीं होती, जब तक उत्पादन के तत्व जिनके लिए उसमें गुंजाइश होती है, पूर्णतया विकसित नहीं हो जाते और उत्पादन के उच्चतर सम्बन्ध तब तक प्रकट नहीं होते, जब तक पुराने समाज भी कोख में ही उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक परिस्थितियां परिपक्व नहीं हो जाती। इसीलिए मनुष्य जाति उन्हीं समस्याओं को अपने हाथों में लेती है, जिन्हें वह हल कर सकती है, बल्कि अधिक ध्यान देने, देखने पर पता चलता है कि कोई समस्या उठती ही तब है, जब उसके हल के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न हो चुकी हैं अथवा उत्पन्न होने लगती हैं।

मार्क्स के इस विचार की व्याख्या पर सेवाइन लिखते हैं कि मार्क्स के उपर्युक्त अवतरण में सांस्कृतिक विकास के विषय में जो सिद्धांत प्रस्तुत किया है, उसमें चार प्रमुख बाते हैं–

Scanned with CamScanner

(1) यह विभिन्न अवस्थाओं का अनुक्रम हैं, प्रत्येक अवस्था में वस्तुओं के उत्पादन एंव विनिमय की एक विशिष्ट व्यवस्था हुआ करती है, उत्पादन शक्तियों की यह व्यवस्था अपनी विशिष्ट एवं उपयुक्त विचारधारा का निर्माण करती है, इस विचारधारा में विधि व राजनीति भी शामिल है ही सभ्यता के तथाकथित अध्यात्मक तत्व भी शामिल होते हैं, जैसे अचार, धर्म, कला, दर्शन इत्यादि एक आदर्श प्रतिमा के रूप में प्रत्येक अवस्था पूर्ण और व्यवस्थित होती है व एक समन्वित इकाई होती है जिसमें वैचारिक तत्व उत्पादन की शक्तियों के साथ घुल-मिल जाते हैं। वास्तविक व्यवहार में उदाहरण के लिए विवरणात्मक और ऐतिहासिक अध्यायों में मार्क्स ने अपने सिद्धान्त की तार्किक कठोरता को कम कर दिया है, उत्पादन की शक्तियाँ एक ही समय में विभिन्न देशों में विभिन्न तरीके से कार्य करती हैं, ये एक ही देश के विभिन्न उद्योगों में विभिन्न रूपों में होती है। उनमें पुरानी व्यवस्था के स्मारक व नई के अकुंर होते हैं। फलतः एक ही जनसंख्या के विभिन्न स्वरों की विभिन्न विचाराधाराएँ होती हैं।

(2) सम्पूर्ण प्रक्रिया द्वंद्वात्मक है, उत्पादन की नव विकसित प्रणाली तथा पुरानी प्रणाली के मध्य जो आन्तरिक संघर्ष होते हैं वही इनकी प्रेरक शक्ति होती है, उत्पादन की नई पद्धति स्वयं को एक विपरीत वैचारिक वातावरण में पाती है। नई उत्पादन पद्धति के विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि पुरानी वैचारिक पद्धति नष्ट हो जाए। पुरानी पद्धति की विचारधारा नई पद्धति का अधिकाधिक बहिष्कार करती है। इसके परिणामस्वरूप आन्तरिक खिंचाव व तनाव यहाँ तक बढ़ जाते हैं कि वे टूटने लगते हैं। उत्पादन की नई व्यवस्था के अनुरूप ही एक नया सामाजिक वर्ग पैदा हो जाता है और उसकी अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार अपनी एक नई विचारधारा बन जाती है, इस नई विचारधारा का पुरानी विचारधारा के साथ संघर्ष होता है, विकास का सामान्य क्रम यही रहता है, इस संघर्ष के परिणामस्वरूप एक अन्य विचारधारा का उदय होना और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

(3) वस्तुओं के उत्पादन और उसके वितरण की पद्धति वैचारिक निष्कर्षों की तुलना में सदैव महत्वपूर्ण होती है। भौतिक अथवा आर्थिक शक्तियाँ सदैव वास्तविक अथवा सार्थक होती हैं, इसके विपरीत वैचारिक सम्बन्ध सदैव घटनापरक होते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वैचारिक सम्बन्धों का अस्तित्व नहीं होता या वे वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं डालते, उनका पारस्परिक सम्बन्ध नहीं। यह भेद ही हीगल की शब्दावली में वास्तविकता या महत्ता की श्रेणी के बीच है। अन्तर सिर्फ यह है कि मार्क्स वैचारिक तत्वों के स्थान पर भौतिक तत्वों को सार्थक मानता है।

(4) द्वंद्वात्मक प्रक्रिया प्रस्फुटित होने की आन्तरिक प्रक्रिया है। समाज की उत्पादन शक्तियां पहले पूरी तरह विकसित हो जाती हैं, इसके बाद उनमें द्वंद्वात्मक परिवर्तन होता है, चूँकि विचार सम्बन्धी ऊपरी रचना अन्तरंग आध्यात्मिक तत्व के आन्तरिक विकास को ही प्रकट करती है। अतः चेतना के ऊपरी धरातल पर जो समस्या दिखाई देती है, उसकी चेतना की और परतें खुलने पर सदैव ही उसका समाधान सम्भव है। इस आध्यात्मिक निष्कर्ष का कोई व्यवहारिक प्रमाण नहीं मिलता।

ऊपर मार्क्स की द्वंद्वात्मक प्रणाली की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया। मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की कहानी तब तक अधूरी है, जब तक कि हम उसके भौतिकवाद की विशेषताओं का उल्लेख नहीं करें। मार्क्स ने भौतिकवाद की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है-

(1) भौतिक आदर्शवाद की भाँति यह विश्वास नहीं करता की संसार निरपेक्ष विचार विश्वात्मा का मूर्त रूप है, इसके विपरीत मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुसार संसार स्वयं अपनी ही प्रकृति से भौतिक है, संसार की अगणित घटनाओं का आधार गतिशील भौतिक तत्व अथवा पदार्थ ही है, जो कि अपने आन्तरिक स्वभाव द्वारा विकसित हो कर विभिन्न रूप में प्रकट होता है। यह विकास भौतिक पदार्थ में निहित एक आन्तरिक विरोध द्वारा संचालित होता है। घटनाओं में अन्तःसम्बन्ध व अन्तःनिर्भरता गतिशील पदार्थों के

Scanned with CamScanner

विकसित होता है, इसके विकास के लिए विश्वात्मा की आवश्यकता नहीं है, एन्जिल्स ने लिखा है कि "प्रकृति के विषय में भौतिकवादी दृष्टिकोण का अर्थ इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है कि प्रकृति को बिना किसी बाहरी समिश्रण के उसी रूप में देखता है, जिस रूप में वास्तव में है।

(2) आदर्शवाद के अनुसार हमारी चेतना, विचार, प्रत्यक्ष दर्शन, उपलब्धि और अनुभूति में ही भौतिक जगत प्रकृति और जीव का अस्तित्व है। इसके विपरीत मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुसार पदार्थ प्रकृति और जीव विषयक वास्तविकता है, जिसका अस्तित्व हमारी चेतना आदि से बाहर व उससे परे है। पदार्थ प्रमुख है क्योंकि यह अनुभूति विचार, चेतना का स्त्रोत है, गौण है, क्योंकि यह पदार्थ का ही प्रतिबिम्ब मात्र है। मार्क्स ने स्वयं लिखा है कि पदार्थ चेतना की उपज नहीं है, वरन् चेतना स्वयं पदार्थ की ही उपज मात्र है। विचार को पदार्थ से जो सोचता है, पृथक् करना असम्भव है, पदार्थ प्रत्येक प्रकार से परिवर्तनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मूल मान्यता यह हैं कि विश्व का आधार भौतिक तत्व या पदार्थ है, जो कि अपने आन्तरिक स्वभाव द्वारा विकसित होकर नाना रूप धारण कर लेता है, यह विकास भौतिक पदार्थ से स्वाभाविक रूप से निहित एक आन्तरिक विरोध द्वारा सम्बन्धित होता है व इसमें वाद, प्रतिवाद व संवाद ये तीन अवस्थाएं होती हैं। विकास की यह प्रक्रिया सार्वभौम व निरन्तर है, साथ ही विकास की यह प्रक्रिया सरल व सादी ही नहीं, वरन् एक बिन्दु पर आकर एकाएक विस्फोट की भाँति होती है। यही सामाजिक परिवर्तन में क्रांति की स्थिति होती है। क्रान्ति न टाली जा सकने वाली एक सामाजिक घटना है व प्रत्येक क्रांति के पश्चात् एक नवीन सामाजिक अवस्था का जन्म होता है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ अपने आन्तरिक स्वभाव द्वारा ही अपने प्रतिवाद को जन्म देता है, इसके फलस्वरूप जो संघर्ष, वाद व प्रतिवाद में होता है, उसमें ही प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन या विकास का समस्त रहस्य हो जाता है कि इसमें इस बात पर अत्यधिक बल दिया जाता है कि जो कुछ भी परिवर्तन या विकास होता है वह आन्तरिक विरोध या संघर्ष द्वारा होता है, यही प्रकृति का विकास या परिवर्तन चाहे यह सामाजिक हो या प्राकृतिक अचूक नियम है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना

मार्क्स का सम्पूर्ण दर्शन यद्यपि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद रूपी स्तम्भ पर टिका हुआ है, तथापि मार्क्स ने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट रूप से कहीं भी व्यक्त नही किया है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद आलोचना में प्रायः निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं-

(1) वेबर का कहना है कि "द्वंद्वात्मक की धारणा अत्यन्त गूढ़ एवं अस्पष्ट है। इसको मार्क्स ने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया है।" उसने यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया कि पदार्थ किस प्रकार गतिशील होता है। लेनिन ने इस सम्बन्ध में कहा कि हीगल के आदर्शवाद का अध्ययन किए बिना मार्क्स के भौतिकवाद को नहीं समझा जा सकता। वस्तुतः मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद अत्यन्त ही रहस्यमय है। एन्जिल्स तथा अन्य बड़े साम्यवादी लेखक अपनी रचनाओं में इसे बहुत अधिक महत्व देते हैं तथा सभी स्थानों पर इसे लागू करने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन विस्तृत रूप से वे कही उसकी विवेचना नहीं करते हैं।

(2) सामान्य रूप से यह माना जा सकता है कि संघर्ष मानवीय विषयों में महत्वपूर्ण भाग अदा करता है, किन्तु उसे विश्वव्यापी नियम मानना अथवा ऐतिहासिक विकास में उसे चालक शक्ति का श्रेय देना न तो उपयुक्त है, न आवश्यक ही। केरयू हण्ट के अनुसार "द्वंद्ववादी यद्यपि हमें मानव विकास के इतिहास में मूल्यवान कृतियों का दिग्दर्शन कराते हैं तथापि मार्क्स का यह दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता कि सत्य का पता लगाने के लिए यही एकमात्र तरीका है।" केवल एक पक्का मार्क्सवादी ही गेहूँ के दाने में प्रस्फुटित होने, उसमें डण्ठल उगने और अन्त में गेहूँ पैदा होने में द्वंद्वात्मक क्रिया के दर्शन कर सकता है तथा प्रस्फुटन को वह दाने का निषेध और दाने की उत्पति को वह निषेध का निषेध समझ सकता है, लेकिन एक सामान्य व्यक्ति के लिए गेहूँ के पौधे के विकास में अथवा ऐसी ही

Scanned with CamScanner

किसी अन्त:क्रिया में न तो संघर्ष है व न ही कोई विरोध, इसलिए कोई द्वंद्व नहीं है। ऐसी घटनाओं को बिना द्वंद्व की सहायता के भी समझा जा सकता है।

(3) मार्क्स ने अपनी शक्तियों का आधार भौतिकवाद को माना है। किन्तु संसार का विकास आर्थिक शक्तियाँ ही हैं। यह कैसे मान लिया जाए? यह सही है कि आधुनिक युग में विकास की गति भौतिकता की ओर अधिक है, लेकिन सर्वकालीन विकास को स्थान में रखने से विदित होगा कि मनुष्य का उद्देश्य सदैव केवल मात्र भौतिक समृद्धि ही नहीं रहा है। हीगल ने इन शक्तियों को आध्यात्मिक माना है और यह बतलाया है कि द्वंद्ववाद द्वारा संसार का विकास भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर हो रहा है। मार्क्स ने हीगल के द्वंद्ववाद को अपनाते हुए आध्यात्मिकवाद के स्थान पर उसको भौतिकता में परिवर्तन कर दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि आध्यात्मिक शक्तियों के स्थान पर आर्थिक शक्तियाँ कैसे सही हैं, केवल यह कह देने मात्र से तार्किक संगति नहीं हो जाती कि हीगल गलत था, उसका सिद्धांत सिर के बल खड़ा हुआ था। उस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि विश्व के भौतिकवादी विकास का रूख एक बार पुनः आदर्शवाद अथवा आध्यात्मवाद की ओर उन्मुख हो सकता है, वर्तमान इतिहास के दार्शनिक इस संभावना से सहमत है।

टायनबी, स्पेंगलर, सोरोकिन और भारत के श्री अरविन्द ने द्वंद्ववाद में खोज की व ये चारों इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार का आधुनिक भौतिकवाद उन तीन या चार तत्वों में से एक है, जो एक वृत्त में घूमते है। सोरोकिन उन्हें "Super System" कहता है, जिसके अनुसार विचारवाद (Ideationism) आदर्शवाद (Idealistic) और विलासितावाद (Sensate) के युग में लगातार एक वृत्त में धूमते रहते हैं, जब एक तत्व सामने आता है तो बाकी के दो पीछे चले जाते हैं, पर रहते तीनों हैं। बारी-बारी से तीनों की प्रधानता का युग आता रहता है और विकास तीनों के योग का परिणाम है। प्राचीन भारत के सांख्य दर्शन में जो द्वंद्ववाद का सबसे प्राचीन सिद्धांत है, इन तीनों को सत, रज, तम के रूप में व्यक्त किया गया है और इन्हीं के आधार में भारतीय दर्शन में अभी तक चतुर्युग की मान्यता है। श्री अरविन्द के सृष्टि के चार तत्वों की खोज इसी के आधार पर है। वे हैं आत्मिक तत्व, मानसिक तत्व, जीवन तत्व और भौतिक तत्व। ये चारों तत्व बार-बार चक्कर काटते हुए द्वंद्वात्मक गति से आगे बढ़ते हैं और विकास की गति एक रेल के पहिए की भाँति हो जाती हैं, जो अपने स्थान पर चक्कर काटती हुई आगे बढ़ती है। जिस प्रकार मार्क्स ने संसार के विकास हेतु भौतिकता का विकास माना है और हीगल ने आध्यात्मिकवाद का विकास माना है, उसी प्रकार श्री अरविन्द ने चारों तत्वों का विकास मूल प्रकृति का उद्देश्य माना है। ये चारों ही तत्व भगवत् तत्व है और पूर्णत्व की अवस्था वह है, जिसमें इन चारों का सामंजस्य होगा, जिसमें आत्मिक तत्व की प्रधानता होगी, भौतिकता केवल एक अस्थाई अवस्था है, जिसमें उसका अधिक विकास हो रहा हैं, इसके बाद आत्मिक युग आएगा और तब उसका अधिक विकास दिखाई पड़ेगा।

(4) मार्क्स की मान्यता है कि पदार्थ चेतनायुक्त नहीं होता, अपितु एक आन्तरिक आवश्यकता के कारण उसका विकास स्वयं ही होता है और वह अपने विरोधों को जन्म देता है, किन्तु मार्क्स की यह मान्यता ठीक नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि पदार्थ अपनी चेतना के कारण अपने विरोधी तत्वों में परिवर्तन बाह्य शक्तियों द्वारा किए जाते हैं, एक विशेष परिस्थिति के अभाव में न तो गेहूँ का बीज पौधे के रूप में परिवर्तित हो सकता है। अन्तर्निहित गतिशीलता के कारण उसमें परिवर्तन क्यों नहीं होता? और यदि एक मिनट के लिए यह मान लिया जाए कि पदार्थों में परिवर्तन आन्तरिक गतिशीलता के कारण होता है तो यह मानने का कोई कारण ही नहीं दिखाई देता कि यह विकास विरोधी तत्वों में संघर्ष के द्वारा होता है।

(5) फायरबाख का कथन है कि भौतिकवादी सिद्धांत के अनुसार मनुष्य परिस्थिति व शिक्षा के अनुसार ढलता है। इस प्रकार मनुष्य में परिवर्तन परिस्थिति के कारण होता है,

Scanned with CamScanner

किन्तु इस कथन की आलोचना करते हुए मार्क्स कहते हैं कि फायरबाख यह भूल जाता है कि परिस्थितियों में परिवर्तन मनुष्यों के द्वारा होता है। मार्क्स का कथन है कि "मनुष्य अपने इतिहास का स्वयं निर्माण करता है, यद्यपि वह ऐसा स्वयं की चुनी हुई परिस्थितियों के द्वारा नहीं करता। इस प्रकार हम कहते हैं कि मार्क्स ने यद्यपि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया है तथापि वह स्वयं इन विरोधी विचारों के मध्य भटक गया है कि मनुष्य परिस्थितियों का निर्माण करता है अथवा परिस्थितियां मनुष्य का निर्माण करती है।

(6) मार्क्स के द्वंद्ववाद में विकास की शक्ति पशुबल है और क्रांति की विकास का सेतु है, क्रांति यदि कृत्रिम तरीकों से लाई गई हो तो भी समाज अपनी उच्चावस्था को प्राप्त करेगी। लेनिन के अनुसार संघर्ष की शक्तियों को एक बार पहचान लेने के बाद उसे तीव्र कर, उस क्रांति को, जिसे आने में हजारों वर्ष लग जाते हैं, उसे कुछ ही वर्षों में लाया जा सकता है। इस तरह समाज की उच्चतम अवस्था के लिए क्रांति की चरम सीमा को आवश्यक बनाने की परिणाम शक्ति और हिंसा का अनिवार्य प्रयोग है, किन्तु हिंसा अनिवार्य हो ऐसी बात नहीं है। प्रतिवाद की शक्ति पहचान कर उसका निराकरण करते रहना और वाद की शक्ति का बराबर आह्वान करते रहने से संश्लेषण की अवस्था स्वतः आ सकती है। ऐसा श्री अरविन्द का विचार है।

वर्ग संघर्ष (Class Struggle)

मार्क्स ने अपने विभिन्न लेखों मे जो कुछ भी लिखा है, उसका सम्पूर्ण सन्दर्भ वर्ग व्याख्या पर आधारित है, मार्क्स ने पूँजीवादी समाज में भरण-पोषण के लिए कुछ निश्चित स्त्रोत बताए हैं, मजदूर बाजार में अपना श्रम बेचते हैं और इसके बदले में उन्हें पारिश्रमिक वेतन के रूप में प्राप्त होता है। भरण-पोषण का एक ओर स्त्रोत पूँजी के मालिक हैं, जो निजी कल-कारखानों के मालिक, इसके लिए पेट भरने का साधन पूँजी है। इसी तरह जीविकोपार्जन का तीसरा स्त्रोत भूमि की मालिकी। यदि हम सभी स्त्रोतों पर नजर डालें व विश्लेषण करें तो यह वेतन, मुनाफाखोरी व भूमि कर है। समाज के ये तीन वर्ग श्रमिक पूँजीपति व भू-स्वामी आम लोगों के लिए सामान्य बात है।

प्रश्न यह उठता है कि वर्ग बनते कैसे हैं? इसके उत्तर में यह कह सकते हैं कि किसी भी वर्ग की पहचान उसकी आमदनी है, किसी भी समाज में उस समाज के सदस्य अपने वेतन या प्रतिदिन की मजदूरी से जीवनयापन करते हैं या अपने पास जो कुछ सम्पत्ति है, उसके मुनाफे से जीवन की निरन्तरता को बनाए रखते हैं या ऐसे भी लोग हैं, जिनके पास भूमि है और उसी से वे आय प्राप्त कर अपना भरण-पोषण करते हैं। इससे यही कहा जा सकता है कि वर्ग के निर्माण में आदमी की आमदनी ही महत्वपूर्ण है। यही आमदनी वर्ग निर्माण की केन्द्रीय धुरी है।

रेमण्ड ऐरां ने मार्क्स की विचारधारा के सम्बन्ध में लिखा कि मार्क्स का समाजशास्त्र वास्तव में वर्ग संघर्ष का समाजशास्त्र है। उनकी इतिहास की अवधारणा में वर्ग संघर्ष मौलिक अवधारणा है। ऐरां ने मार्क्स के वर्ग सम्बन्धी सम्बोध के तीन प्रमुख प्रस्ताव रखे हैं-

(1) वर्गों का अस्तित्व पद्धतियों के विकास के साथ इतिहास की भिन्न-भिन्न दशाओं से जुड़ा है अर्थात् वर्ग उत्पादन के विकास के साथ बनते हैं।

(2) वर्ग संघर्ष अनिवार्य रूप से सर्वहारा को अधिनायकवाद की ओर ले जाता है।

(3) यह अधिनायकवाद जो कि केवल संक्रमण का काल होता है, वर्गों का उन्मूलन करता है और वर्गहीन समाज की स्थापना की ओर ले जाता है।

स्पष्ट है कि कार्ल मार्क्स ने प्रत्येक समाज में दो वर्गों की विवेचना की है, मार्क्स ने बताया कि प्रत्येक समाज में दो विरोधी वर्ग, एक शोषक व दूसरा शोषित वर्ग होता है, जिनमें संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। इसी को मार्क्स वर्ग संघर्ष का नाम देते हैं।

Scanned with CamScanner

के नियम के
विकास में ही एक नियम हे और इसी गतिशीलता संसार मार्क्स ने अपने कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में कहा है कि
आधार पर ही
समाज के अस्तित्व के साथ वर्ग संघर्ष का जन्म हुआ है।

मोटे रूप में उत्पादन के साधनों पर, निजी स्वामित्व पर आधारित उत्पादन सम्बन्धों वाली संरचना में वर्ग और वर्ग संघर्ष सामाजिक संरचना के मुख्य तत्व होते हैं, लेनिन ने अपनी पुस्तक 'महान सूत्रपात' में वर्ग की परिभाषा देते समय लिखा है कि वर्ग लोगों के बड़े-बड़े समूहों को कहते हैं, जो सामाजिक उत्पादन की इतिहास द्वारा निर्धारित पद्धति में अपने स्थान की दृष्टि से उत्पादन साधनों के प्रति अपने सम्बन्धों से श्रम के सामाजिक संगठन में अपनी भूमिका की दृष्टि से और उसके फलस्वरूप सामाजिक सम्पदा के उस भाग की, जो उसके पास है, प्राप्ति की विधि तथा आकार की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। वस्तुतः वर्ग की प्रमुख विशेषता आर्थिक ह, लेकिन वर्ग भेद राजनीति, दैनिक जीवन, विचारधारा आदि क्षेत्रों में भी दिखाई देता है। प्रत्येक वर्ग अपनी राजनैतिक चेतना नैतिकता आदि है, लेकिन अन्तिम विश्लेषण में वर्ग की विशेषता आर्थिक तथ्यों से निर्धारित होती है।

मार्क्स ने वर्ग की अवधारणा के विश्लेषण के समय वर्ग संघर्ष को स्पष्ट किया। आपने बताया कि मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव समूह सदैव संघर्षरत रहे हैं। इन संघर्षरत मानव समूहों को ही मार्क्स ने वर्ग कहा है। रेमण्ड ऐरां लिखते हैं कि मार्क्स ने कहीं भी वर्ग की स्पष्ट व्याख्या तो नही की, परन्तु उनकी कुछ विशेषताएं अवश्य बताई हैं।। इनमें एक शोषण व दूसरा शोषित। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी है, साथ ही वर्ग की दूसरी विशेषता यह है कि इनकी प्रकृति दो तत्वों में केन्द्रीकरण की है। इस तरह मार्क्स सभी समाजों में दो वर्गों का उल्लेख करते हैं वे कहते हैं कि ये दोनों वर्ग परस्पर संघर्ष करते रहते हैं। वर्तमान पूँजीवाद भी इससे अलग नहीं है। इसमें भी दो वर्ग है- एक बुर्जुआ व दूसरा सर्वहारा। इन दोनों वर्गों का उद्‌भव प्रमुख रूप से आर्थिक है। एक वर्ग बुर्जुआ के हाथ में सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली है, तो दूसरा इन साधनों से वंचित है। मार्क्स द्वारा इन वर्गों के संघर्ष पर अत्यधिक जोर दिए जाने का कारण ही वर्ग संघर्ष का समाजशास्त्र एक अलग समाजशास्त्र के रूप में विकसित किया।

मार्क्स के अनुसार उत्पादन की प्रक्रियाओं में विभिन्न वर्गों की भूमिकाएं भिन्न-भिन्न होती हैं, अतः वर्गों की आवश्यकताओं तथा हितों के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा होना अत्यन्त आवश्यक है व यही विरोधी विचारधाराओं के लिए एक धरातल प्रस्तुत करता है। विकासशील उत्पादन शक्तियों और प्रतिक्रियावादी व स्थिर सम्पत्ति के सम्बन्धों के बीच टकराव पैदा होता है व संघर्ष की गति तीव्र हो जाती है। इतिहास की गति वर्गों की भूमिका के द्वारा निर्धारित होती है व सामाजिक आर्थिक वर्ग इन सभी समाजों में पाए जाते हैं, जहाँ श्रम के विभाजन का सामान्य सिद्धान्त लागू होता है। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि वर्ग संघर्ष एक ऐसी उत्पादन व्यवस्था से पैदा होता है, जो समाजों को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर देती है। इन वर्गों में एक वर्ग वह होता है, जो कठोर परिश्रम कर उत्पादन करता है। जैसे दास, अर्द्धदास, किसान, मजदूर, सर्वहारा आदि व दूसरा वर्ग वह है, जो उत्पादन के लिए बिना परिश्रम किए, बिना कोई काम किए उत्पादन के बहुत बड़े भाग का उपयोग करता है, जैसे दासों के मालिक, सामन्त, भू-स्वामी, पूँजीपति इत्यादि। मार्क्स के अनुसार इन वर्ग संघर्ष को मनुष्य के उत्पादन की पहली से ऊँची अवस्था तक पहुँचने में सहायता करता है। वे यह मानते हैं कि कोई भी क्रांति तब तक सफल नहीं होती, जब तक कि उसमें एक नई आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था नहीं उभरती। इसीलिए मार्क्स ने कहा कि वर्ग संघर्ष मूल रूप से व्यक्तिगत सम्पति के कारण होता है और यह व्यक्तिगत सम्पति ही शोषण की जड़ है। इसके कारण ही मूल रूप से मार्क्स कहते हैं कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज में दो प्रमुख वर्ग बन जाते हैं, एक के हाथ में उत्पादन के साधन केन्द्रीकृत हो जाते हैं, जिससे वह कमजोर वर्ग का शोषण करना आरम्भ करता है। इसी शोषण के परिणामस्वरूप निरन्तर संघर्ष चलता रहता है।

Scanned with CamScanner

मार्क्स का कहना है कि अब तक का जितना इतिहास ज्ञान है, उनमें सभी युगों में वर्ग व्यवस्था रही है। यहां वर्ग व्यवस्था को इन निम्न चारों स्तरों पर स्पष्ट करते हैं–

(1) आदिम साम्यवादी समाज में वर्ग–यह समाज इतिहास का प्रथम युग था, जिसमें लोगे कबीलों व समुदायों में रहते थे, जो गोत्र पर आधारित थे। एक क्षेत्र एक भाषा से ये लोग जुड़ हुए थे। उत्पादन और वितरण का तरीका इन समाजों में साम्यवादी था अर्थात् सब मिलकर उत्पादन करते व सामूहिक रूप से उसका उपयोग करते। न तो इन समाजों में व्यक्तिगत अधिकार थे व न ही कोई किसी का शोषण करता था। इसलिए वहाँ कोई वर्ग व्यवस्था नहीं था। इस समाज में श्रम विभाजन भी लिंग पर आधारित था अर्थात् स्त्रियां पुरूषों से कम तनाव वाले कार्य करती थीं। इसी तरह बालक, युवा व वृद्धों में भी श्रम विभाजन पाया जाता था।

(2) दासत्व युग में वर्ग–धीरे–धीरे परिस्थितियाँ बदली, समाज का ढांचा भी बदला व एक नए समाज की स्थापना हुई, जिसे दासमूलक समाज कहा। इसमें मनुष्य कृषि, पशुपालन, दस्तकारी जैसे कार्यों में लगा रहा। इन कार्यों ने समाज में निजी सम्पति के विचारों को विकसित किया, जिससे श्रम विभाजन भी नए रूप में विकसित हुआ। इस समाज में सामाजिक उत्पादन के साधनों पर संयुक्त स्वामित्व के स्थान पर कुछ लोगों का ही स्वामित्व हो गया, जैसे भूमि, श्रम, औजार, पशु, बीज आदि उत्पादन के साधन थे, पर एक समुदाय के कुछ लोगों का स्वामित्व हुआ व इस तरह एक नया वर्ग दास और स्वामी के रूप में उभरा। दास स्वामी वर्ग में दासों को पशुओं की तरह समझा जाता था और इन्हें खरीदने व बेचने के अधिकार मालिक को था। इस युग में दास स्वामी के अधीन थे, सम्पूर्ण रूप से वे अपने मालिक पर आधारित थे। इस तरह स्वामियों ने दासों का शोषण करना प्रारम्भ किया। इस शोषण में मूल आधार अधिकाधिक शक्ति को केन्द्रित करना था। इस तरह समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया, जो आदिम साम्यवादी समाज में नही था।

(3) सामन्ती समाज में वर्ग–सामन्ती समाज में भी दो वर्ग होते है, एक सामन्त और दूसरा अर्द्धदास किसान। सामन्त वे थे जो विशेष रूप से उत्पादन के साधन के रूप में भूमि के मालिक थे और अर्द्धदास किसान। सामन्तों की भूमि पर अपने परिश्रम में खेती का कार्य करते थे। अर्द्धदास दासत्व युग की तरह दास के जैसे नहीं थे, परन्तु इतना अवश्य था कि वे सुबह से शाम तक और कई बार तो शाम के पश्चात् भी सामन्तों के यहाँ कार्य करते थे। सामन्तों ने अर्द्धदास किसानों का शोषण करना प्रारम्भ किया व इस तरह स्पष्ट दो वर्ग विभाजित हो गए।

(4) पूँजीवादी समाज में वर्ग–जब समाज में मशीनों का आविष्कार हुआ और उत्पादन के साधनों के रूप में बड़ी–बड़ी मशीनों की स्थापना हुई, तब इन उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का अधिकार हो गया, उन्हें पूँजीपति कहा। उत्पादन के कार्यों में लगे लोगों को श्रमिकों का नाम दिया, मार्क्स ने इन श्रमिकों को सर्वहारा वर्ग व पूँजीपति को बुर्जुआ वर्ग कहा। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी थे, क्योंकि बुर्जुआ उत्पादन के साधनों से उत्पादित वस्तुओं का अधिकाधिक लाभ प्राप्ति के रूप में विक्रय करते व बदले में सर्वहारा को उस लाभ का पूरा हिस्सा नहीं देते अर्थात् सर्वहारा का शोषण प्रारम्भ किया। इस तरह उत्पादन के साधनों के स्वामी और उत्पादन के साधनों पर कार्य करने वाले श्रमिक के रूप में दो वर्ग की स्थापना हुई।

इस प्रकार मार्क्स यह मानते हैं कि आर्थिक उत्पादन के हर स्तर पर दो वर्ग विद्यमान रहे हैं। कभी दास व मालिक, तो कभी सामन्त और किसान व आज पूँजीपति व श्रमिक। इनमें एक वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, तो दूसरा उन उत्पादन के साधनों पर अपने परिश्रम से उत्पादन करता है। उत्पादन के साधनों के स्वामी हमेशा यह चाहते हैं कि अधिकाधिक लाभ उन्हें मिले व श्रमिकों का वे अधिक से अधिक शोषण कम भुगतान कर करना चाहते हैं, इसी ने समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म दिया।

Scanned with CamScanner

मार्क्स ने अपने विचारों में वर्ग संघर्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया। मार्क्स के अनुसार समाज में हर स्तर पर दो वर्ग मौजूद रहे हैं, एक शोषण करने वाला व दूसरा शोषित होने वाला। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी होते हैं और इन्हीं में संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहती है। मार्क्स कहते हैं कि संघर्ष से ही समाज का विकास होता है व समाज निरन्तर आगे की ओर अग्रसर होता है। प्रत्येक समाज में व्यक्तियों के हितों में परस्पर विरोध पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को सर्वोच्च मानते हुए दूसरों के हितो के मार्ग में रूकावट डालता है, यहीं से संघर्ष प्रारम्भ होता है। मार्क्स ने अपनी प्रमुख रचना 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में लिखा कि "अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है, स्वतन्त्र व्यक्ति तथा दास, कुलीन वर्ग तथा सामान्य जनता, सामन्त तथा अर्द्धदास, किसान श्रेणीपति तथा दस्तकार एक शब्द में शोषक तथा शोषित, सदा एक दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष, परन्तु निरन्तर युद्ध करते रहते हैं। इस संघर्ष का अन्त हर बार मार्क्स अनुसार तो समाज में क्रांति या संघर्षरत वर्गों के सर्वनाश से हुआ है।" इस तरह सभी समाजों में वर्गों के पाए जाने व वर्ग संघर्ष को एक ऐतिहासिक संघर्ष के रूप में मार्क्स ने विवेचना की। हालांकि मार्क्स ऐसे पहले व्यक्ति नहीं थे, जिन्होंने वर्ग संघर्ष की बात कही। उनसे पहले भी कई विचारकों, इतिहासकारों ने वर्ग संघर्ष की व्याख्या की। वर्ग तथा वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में मार्क्स ने अन्य विचारकों से अलग तीन बातें जोड़कर इसकी विवेचना की, वे हैं-

(1) विभिन्न वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास के किसी ऐतिहासिक क्रम विशेष के साथ ही जुड़ा होता है।

(2) वर्ग संघर्ष का अन्तिम रूप सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्त्व होता है।

(3) अधिनायकत्व की यह अवस्था अपने में सभी वर्गों का सर्वनाश कर एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना है।

मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किए, वे मूल रूप से उस समय इग्लैंड की परिस्थितियों पर आधारित है। उस समय में बड़े-बड़े कल कारखानों की स्थापना व उनसे भारी मात्रा में उत्पादन हो रहा था, ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठान में उत्पादन के साधनों के मालिक (पूँजीपति) दिन-प्रतिदिन धनी होते जा रहे थे। और श्रमिक निर्धन से और निर्धन हो रहे थे। इनका कारण यह कि पूँजीपति श्रमिकों का खूब शोषण कर रहे थे। मार्क्स ने एक स्थान पर कहा कि पूँजीपति उस जोंक की भाँति है, जो श्रमिकों का खून चूसती है और जितना खून चूसती है, उतनी ही खून चूसने की लालसा प्रबल होती है, क्योंकि पूँजीपतियों का राजनीतिक व सरकारी स्तर पर पूर्ण प्रभुत्व था और वे अपने हितों की रक्षा से सम्बन्धित कानून बनवा रहे थे। यहाँ तक कि सरकार भी उन्हीं के इशारों पर चलती थी। इस शोषण को देखकर ही मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के विचार को मूर्त रूप दिया

मार्क्स इतिहास को राजा महाराजा की कहानी नहीं मानते, बल्कि वे इसे आर्थिक वर्गों व उनके संघर्ष की कहानी बताते हैं। उनके लिए वर्ग संघर्ष इतिहास को समझने की कुंजी है। मानव इतिहास का सही अध्ययन आर्थिक इतिहास अध्ययन ही है, क्योंकि आर्थिक हितों से ही वर्गों का निर्माण होता है ओर वर्ग संघर्ष की अवधारणा में संघर्ष पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग जैसे प्रमुख अवधारणाओं को स्पष्ट किया, ये हैं-

(1) संघर्ष-संघर्ष का तात्पर्य निरन्तर युद्ध से जुड़ी रहने से नहीं है, इसका मूल अर्थ है कि समाज में एक ऐसा वर्ग जो अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाता। इसलिए असन्तुष्ट रहता है और यही असन्तुष्टि उसे हड़ताल या विरोध के लिए उकसाती है। जब असन्तोष सहनशीलता के बाहर हो जाता है तब वह क्रांति का रूप ले लेता है। यह क्रांति शोषित वर्ग को पराजित करती है, तथा शोषित वर्ग की विजय से होती है।

(2) पूँजीपति-पूँजीपति को मार्क्स ने उत्पादन के साधनों का स्वामी कहा है। पूँजीपति वर्ग समाज का शक्तिशाली व सभी सुखों को भोगने वाला वर्ग कहा है। उसके पास उत्पादन, विक्रय कीमत, वितरण इत्यादि की निर्णायक शक्ति होती है। लाभ की प्राप्ति हेतु अधिकाधिक श्रमिकों का शोषण करता है। पूँजीपति को अतिरिक्त मूल्य को हड़पने वाला

Scanned with CamScanner

परजीवी कहा है, जो सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि लाभ के लिए उत्पादन करता है।

(3) सर्वहारा वर्ग–सर्वहारा वर्ग उसे कहा है, जो कारखानों में अपनी आजीविका हेतु श्रम बेचता है। मशीनों पर काम करने वाला एक वर्ग है, जिसे पूँजीपतियों के अधीन उनकी दया पर निर्भर रहना पड़ता है। सर्वहारा वर्ग अपनी मजदूरी स्वयं निर्धारित नहीं करता, बल्कि पूँजीपतियों की इच्छा व बाजार मूल्य से मजदूरी तय होती है। सर्वहारा वर्ग सब तरफ से हारा हुआ तथा अपनी पसन्द से जीवन व्यतीत नहीं कर सकने वाला एक वर्ग है।

मार्क्स ने कहा कि जब पूँजीवादी व्यवस्था विकसित हुई व उत्पादन के लिए बड़ी-बड़ी मशीनों की स्थापना हुई, इसी ने दो वर्गों को जन्म दिया। एक बुर्जुआ व दूसरा सर्वहारा । पूँजीपति अपनी मशीनों से अधिक से अधिक उत्पादन करने की रूचि रखते और श्रमिक मशीनों पर काम करके पारिश्रमिक प्राप्त करना चाहते है। इसी ने दोनें को एक दूसरे के नजदीक ला कर रख दिया। पूँजीपतियों ने श्रमिकों को काम पर रखते समय कार्य के घण्टे निर्धारित कर पारिश्रमिक देना तय किया इसके लिए श्रमिकों को उन सभी शर्तों को मानने के लिए विवश होना पड़ा, जो पूँजीपतियों ने उन पर लगाई, क्योंकि श्रमिक बेकार व भुखमरी का सामना कर रहे थे। इसलिए दोनों एक दूसरे के पूरक बन गए, परन्तु धीरे-धीरे दोनों वर्ग एक दूसरे की आवश्यकता होते हुए भी अपने-अपने हितों की पूर्ति हेतु परस्पर संघर्ष के लिए तैयार हो गए। पूँजीपति अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते है और श्रमिक के हितों को नजर अन्दाज कर उसका शोषण करता है। दूसरी ओर श्रमिक वर्ग भी अपनी स्थिति सुधारने के लिए, अच्छा वेतन प्राप्त करने के लिए पूँजीपतियों के विरूद्ध आवाज उठाता है। इससे दोनों के हित टकराते हैं, यही क्रांति की गर्जना है। इस क्रौंति के फलस्वरूप पूंजीवाद का विनाश अवश्यम्भावी है, क्योंकि पूँजीवाद में ही उसके विनाश के बीज मौजूद हैं, इसी प्रकार मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद की प्रकृति ही ऐसी है कि वह अपनी कब्र स्वयं खोदता है (Capitalism dig its own grave)।

मार्क्स कहते हैं कि पूँजीवाद की प्रकृति वर्ग संघर्ष के आधार पर ही आत्मनाशी है। अतिरिक्त मूल्य के रूप में श्रमिकों का शोषण, श्रमिकों के साथ अन्याय, पूँजी का केन्द्रीयकरण, श्रमिकों की निर्धनता व बेरोजगारी, श्रमिकों पर अत्याचार, आर्थिक संकट, यातायात व संचार के साधनों का विकास, श्रमिक वर्ग में चेतना तथा सहयोग की भावना उत्पन्न होने वाले कुछ ऐसे कारण है जिससे पूँजीवाद की कब्र तैयार होगी। मार्क्स ने पूँजीवाद के अवश्यम्भावी होने वाले विनाश के जिन कारणों की विवेचना की, उनमें से कुछ हैं–

(1) पूँजीवादी में व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से उत्पादन– पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए करता है और वह समाज के हित और उपयोग को ध्यान में नहीं रखता। जिसके फलस्वरूप समाज की माँग व उत्पादित माल में सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता।

(2) पूँजीवादी में विशाल उत्पादन व एकाधिकार की प्रवृति– पूँजीवादी व्यवस्था में बड़े पैमाने पर उत्पादन व एकाधिकार की प्रवृति होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में पूँजी एकत्रित हो जाती है व श्रमिकों की संख्या बढ जाती है। इस तरह पूँजीवादी वर्ग अपने विनाश के लिये स्वयं श्रमिकों को शक्ति प्रदान करता है।

(3) पूँजीवादी आर्थिक संकट का जन्मदाता– पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली समाज में आर्थिक संकट उत्पन्न करती हैं। बहुधा उत्पादन श्रमिक वर्ग को क्रय शक्ति से अधिक हो जाता है, तब लाभ की कोई आशा नहीं रहती। पूँजीपति उस स्थिति में उत्पादित माल को नष्ट करके माल का कृत्रिम अभाव पैदा करता हैं। इस तरह वह अस्थायी आर्थिक संकट को जन्म देता है।

Scanned with CamScanner

पूँजीवादी वर्ग की इस प्रवृति के कारण श्रमिक वर्ग व जनता में घोर असन्तोष उत्पन्न होता है, जो पूँजीवादी द्वारा अपनी मौत को स्वयं आमन्त्रित करता है।

(4) अतिरिक्त मूल्य को पूँजीपतियों द्वारा हड़प लेना– पूँजीवाद में उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता है इसलिये पूँजीपति अतिरिक्त मूल्य को अपने पास रख लेता है, जबकि आय की दृष्टि से इस पर श्रमिकों का अधिकार है। अतिरिक्त मूल्य वह मूल्य है, जो श्रमिकों द्वारा उत्पादित माल की वास्तविक कीमत व उस वस्तु की बाजार की कीमत का अन्तर होता है। इस अतिरिक्त मूल्य को पूँजीपति अपने पास रखकर श्रमिकों का शोषण करता है।

(5) पूँजीवादी में व्यक्तिगत तत्व की समाप्ति–पूँजीवादी प्रणाली में व्यक्ति के वैयक्तिक चरित्र का लोप हो जाता है और वह मशीनी तत्व हो जाता है। इस प्रणाली में श्रमिक स्वाभिमान खोकर यन्त्रों का केवल दास मात्र बन जाता है और इससे उसकी सृजनात्मक शक्ति को भी धक्का लगता है। श्रमिक की ऐसी अवस्था ही श्रमिक वर्ग में चेतना का संचार करती है और पूँजीवाद के विनाश के लिए विधि है।

(6) पूँजीवादी श्रमिकों की एकता में सहायक– पूँजीवादी अनेक तरह से श्रमिकों में असन्तोष फैलाने का कार्य करने है। ऐसे असन्तोष का परिणाम श्रमिक वर्ग की एकता का उदय होना है। इससे इसमें अतिरिक्त पूँजीवादी प्रणाली में अनेक उद्देश्य एक साथ एकत्र हो जाते हैं, जिनमें लाखों श्रमिक काम करते हैं। ये श्रमिक परस्पर मिलते-जुलते हैं, इससे उन्हें एक दूसरे को समझने व संगठन को सुदृढ़ करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, जो पूँजीवाद का प्रबल विरोध करने में सहायक होता है।

(7) पूँजीवाद अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन का जन्मदाता–पूँजीवाद में होने वाले तीव्र विकास विश्व के अनेक देशों को एक दूसरे के नजदीक लाता है। जब पूँजीपति उत्पादित माल को अपने देश में नहीं रख पाता तो वह दूसरे देशों में मंडियों की खोज करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के श्रमिक नजदीक आते हैं, संगठित होते हैं और जो संघर्ष पहले राष्ट्रीय स्तर पर सीमित था, अब वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का हो जाता है व तब श्रमिक इस नारे को बुलन्द करता है 'दुनिया के श्रमिक एक हो जाओं'। विश्व के सभी श्रमिक मिल कर पूँजीवाद के विरूद्ध एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति का श्रीगणेश करेंगे, जो पूँजीवाद की जड़ें खोखली कर उसके स्थान पर समाजवाद की स्थापना करेंगें।

इस प्रकार सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में वर्ग संघर्ष के द्वारा राज्य के यन्त्रों पर अधिकार हो सके, जिसके पश्चात् समाजवाद का युग प्रारम्भ होगा। मार्क्स कहते हैं कि राज्य श्रमिक वर्ग के हाथों में दमन का बहुत बड़ा हथियार होता है व क्रांति के बाद भी सामन्तवाद व पूँजीवाद के दलाल क्रांति का प्रयास करते हैं। इसलिए पूँजीवाद का समाजवाद में जाने के संक्रमण काल में सर्वहारा के अधिनायकत्व की अस्थाई अवस्था होगी। समाजवाद की स्थापना के पश्चात् शोषण का अन्त हो जाएगा, वर्ग मिट जायेंगे और प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम के आधार पर उत्पादन का भाग मिलेगा। किन्तु साम्यवाद की अधिक उन्नत अवस्था में प्रत्येक को अपनी आवश्यकता के अनुसार मिलने लग जाएगा। धीरे-धीरे राज्य व इसका स्थान आपसी सहयोग व सहकारिता के आधार पर बनी संस्थाए लेगी, तब न तो वर्ग रहेंगे व न ही वर्ग संघर्ष।

मार्क्स स्वयं लिखते हैं कि "कम्युनिस्ट समाज तब ऊँची मंजिल पर पहुंच जाएगा, जब श्रमिकों पर से व्यक्तियों की गुलामों जैसी निर्भरता दूर हो जाएगी व साथ ही शारीरिक व मानसिक श्रम का विरोध भी समाप्त हो जाएगा, तब श्रम न केवल जीविका का साधन बल्कि जीवन की प्रमुख चाह बन जाएगा, जब व्यक्तियों के चौमुखी विकास के साथ ही साथ उत्पादन शक्तियों का भी विकास हो जाएगा व सहकारी सम्पदा में सभी झरने भरपूर संकीर्ण सीमा को पूरे तौर पर पार किया जा सकता है। तभी समाज

Scanned with CamScanner

अपने झण्डे पर इस नारे को अंकित कर सकता है कि प्रत्येक को उसकी 'योग्यता के अनुसार नहीं प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।"[4]

सर्वहारा पूँजीपति के मध्य छिड़े वर्ग संघर्ष का अन्त तभी होगा जब पूँजीवाद समाप्त होगा। उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार होने से उत्पादन पर लगे हुए कृत्रिम प्रतिबंध हट जाऐंगे। उत्पादन शक्तियों व उपज की बर्बादी बंद हो जाएगी। वर्ग संघर्ष द्वारा वर्गों की समाप्ति आज केवल स्वप्न की बात नहीं रह गई है। संसार बड़ी तेजी से वर्ग विहीन समाजवादी समाज की स्थापना की ओर बढ़ रहा है। एंजिल्स ने अपनी कृति में लिखा है कि "आज इतिहास में पहली बार ऐसी संभावना उत्पन्न हो गई है कि सामूहिक उत्पादन द्वारा समाज के प्रत्येक सदस्य को योग्य जीवन उपलब्ध हो सके, जो भौतिक दृष्टि से यथेष्ठ सम्पन्न हो व दिन-प्रतिदिन ज्यादा सम्पन्न होता जाए। यही नही एक ऐसा जीवन उपलब्ध हो, जिसमें हर व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक शक्तियों का उन्मुख विकास निश्चित हो इस बात की सम्भावना पहली बार उत्पन्न हुई है पर हुई अवश्य है।"[5]

एन्जिल्स आगे लिखते हैं कि सर्वहारा वर्ग की क्रांति के द्वारा इन विरोधों व अन्य विरोधों व अन्य विरोधों का समाधान होगा। सर्वहारा मुक्ति के इस ढांचे को पूरा करना आधुनिक सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक कर्तव्य है। इसके बाद मनुष्य उत्तरोत्तर सचेत रूप से अपने इतिहास का निर्माण करेगा। एन्जिल्स के अनुसार इस समय ने मनु द्वारा परिचालित सामाजिक क्रियाओं के परिणाम मुख्यत: व निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा में व इसकी इच्छा के अनुरूप होंगे। यह मनुष्य की बाध्यता के राज से स्वतंन्त्रता के राज में छलांग है।

वर्ग संघर्ष के सिद्धांत की आलोचना

(Criticism of Theory of Class Struggle)

मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की आलोचना भी उसके इस सिद्धांत से कम नहीं है। समाज में सामाजिक वर्गों के अस्तित्व से कोई इंकार नहीं कर सकता। प्रत्येक सभ्य समाज में धन, सम्पति, वर्ग, पद, प्रतिभा आदि के आधार पर भेद रहे हैं, जिनमें संघर्ष होता रहता है, पर मार्क्स के उपयुक्त वर्ग संघर्ष के सिद्धांत की अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने तीव्र आलोचना की है-

(1) समाज में सहयोग संघर्ष की अपेक्षा अधिक-मार्क्स सामाजिक जीवन में संघर्ष को अधिक महत्व देते हैं पर मुख्यत: सहयोग से ही सामाजिक जीवन चलता है, मालिक व मजदूर परस्पर सहयोग न करें तो उत्पादन संभव नहीं है, यहाँ तक कि संघर्ष के लिए भी दोनों का सहयोगी होना आवश्यक है। समाज में मूलत: सहयोग है, न कि संघर्ष। क्रोपोटकिन व टार्डे ने भी मानव जागृति के लिए वर्ग संघर्ष की बजाय वर्ग सहयोग को अधिक बल दिया है।

(2) समाज में दो वर्ग ही नहीं-समाज में मुख्यत: तीन वर्ग पाए जाते हैं। तीसरा वर्ग है मध्यम वर्ग, जबकि मार्क्स ने समाज में केवल दो वर्गों की ही व्याख्या की है जबकि तीसरा वर्ग ही समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सारोकिन कहते हैं कि मार्क्स ने जिन दो वर्गों की चर्चा की है, उनकी कहीं कोई स्पष्ट परिभाषा भी नहीं दी है। फ्रांसीसी श्रमिक संघवादी सोरल ने तो मार्क्स के वर्गों को एक अमूर्त कल्पना माना है।

(3) वर्ग आधार एक ही नहीं-मार्क्स ने सामाजिक व आर्थिक वर्गों को एक मान लेने की भी गलती है। समाजशास्त्री आर्थिक आधारों के अलावा धर्म, शिक्षा, आयु, योग्यता इत्यादि के आधार पर भी वर्ग विभाजन करते हैं।

(4) बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा क्रांति संभव-मार्क्स के अनुसार श्रमिक वर्ग क्रांति द्वारा समाज को बदलेगा, किन्तु यह सत्य नहीं है। अधिकतर क्रांतियों का सूत्रधार बुद्धिजीवी वर्ग ही रहा है, लेनिन भी इस बात को स्वीकार करते हैं।

Scanned with CamScanner

(5) इतिहास वर्ग संघर्ष का ही नहीं–मार्क्स का यह मानना भी गलत है कि अब तक का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। विश्व युद्ध भी दो वर्गों के मध्य नहीं अपितु दो विरोधी राष्ट्रों के मध्य हुए थे। अतः उसमें वर्ग भावना के स्थान पर राष्ट्रीय भावना थी।

(6) क्रांति औद्योगिक देशों में ही नहीं–मार्क्स के अनुसार श्रमिक वर्ग द्वारा क्रांति होगी व पूँजीवादी का विनाश। उनके अनुसार क्रांति सर्वप्रथम औद्योगिक देशों में होगी किन्तु यह धारणा भी गलत है, क्योंकि किसी भी औद्योगिक देश में क्रांति नहीं हुइ है। साम्यवाद सबसे पहले चीन व रूस में आया जो कि कृषि प्रधान देश है।

मार्क्स की इन आलोचनाओं के बावजूद वर्ग संघर्ष सिद्धांत एक महत्वपूर्ण व्याख्या है। इस सिद्धांत ने ही सर्वहारा वर्ग को दास्ता से मुक्ति का उपाय बताया है। इस सिद्धांत के मूल्यांकन में प्रोफेसर हण्ट ने लिखा कि "मार्क्स का यह विचार है कि सभी झगड़े वर्ग संघर्ष से होते हैं, यद्यपि आम लोगों को यह विश्वास है कि उनका दुर्भाग्य पूँजीवादी व्यवस्था के कारण है, जो सर्वहारा वर्ग की विजय के साथ ही समाप्त हो जाएगा। यह बात महत्व रखती है पर एक वैज्ञानिक धारणा के रूप में मिथ्या है।"[6]

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

मार्क्स ने अपने विचारों में सामाजिक परिवर्तन को भी स्थान दिया। आपके विचार को निर्णयवादी सिद्धांत कहा जाता है। मार्क्स ने मानव समाज में होने वाले परिवर्तन को समझाने के लिए आर्थिक कारण को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसे सर्वाधिक शक्तिशाली, मौलिक और निर्णायक कारक माना है। यद्यपि मार्क्स ने आर्थिक कारक को सामाजिक परिवर्तन के साथ अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किए है, किन्तु उत्पादन प्रणाली सर्वप्रथम आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाती है, उसके पश्चात् सामाजिक व्यवस्थाओं, विचारों व दृष्टिकोणों में परिवर्तन होता है। अतः मार्क्स की विचारधारा की पृष्ठभूमि में आर्थिक कारण ही है। मार्क्स ने कहा है कि "भौतिक जीवन में उत्पादन का प्रकार जीवन की सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं की सामान्य प्रकृति को निश्चित करता है।"

मार्क्स की मान्यता है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भौतिक शक्तियों का विकास किया, सामाजिक उत्पादन में संलग्न व्यक्तियों में कुछ निश्चित सम्बन्ध स्थापित किये, जो मनुष्य की इच्छा के अनुसार नहीं होते, बल्कि उत्पादन की प्रणाली के विशिष्ट प्रकार से निर्धारित होते हैं। उत्पादन के सम्बन्धों का योग ही समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करती है और यह आर्थिक संरचना समस्त वैधानिक और राजनैतिक संरचनाओं को निश्चित करती है, जिससे एक निश्चित प्रकार की सामाजिक चेतना का विकास होता है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उसका भौतिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। जैसे-जैसे उत्पादन प्रणाली का विकास होता जाता है वैसे-वैसे एक निश्चित स्तर पर पहुँच कर भौतिक उत्पादन की शक्तियों व उत्पादन सम्बन्धों में संघर्ष होने लगता है व तब क्रांति हो जाती है।

मार्क्स के अनुसार केवल आर्थिक संरचना ही सामाजिक परिवर्तन का कारक है, शेष सभी सामाजिक कारक, सांस्कृतिक कारक इसके इर्द-गिर्द घूमते हैं। आर्थिक संरचना से मार्क्स का तात्पर्य उत्पादन के भौतिक सम्बन्धों से है। उत्पादन प्रणाली स्वामी व दास, मालिक व मजदूर, जागीरदार व किसान, शोषक व शोषित आदि सम्बन्धों की व्यवस्था को जन्म देती है। अतः संरचना में विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध होते हैं, ये सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था में पाए जाने वाले अन्य तत्वों को निर्धारित करते हैं। उत्पादन प्रणाली या उत्पादन की भौतिक शक्तियों के सम्बन्धों को प्रभावित करती है। उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होते ही उत्पादन सम्बन्धों अर्थात् आर्थिक ढांचे में भी परिवर्तन हो जाता है। मशीनों के प्रयोग से औद्योगिकरण हुआ व उसके फलस्वरूप सामन्तों व किसानों का सम्बन्ध धीरे-धीरे पूँजीपतियों व मजदूरों के सम्बन्ध में बदलने लगा। इस परिवर्तन में एक ऐसी निश्चित अवस्था आती है, जहाँ उत्पादन शक्तियों व उत्पादन सम्बन्धों में संघर्ष होने लगता है, मशीनों का प्रयोग, श्रम शक्ति का मूल्य

Scanned with CamScanner

कम कर देता है, ऐसी स्थिति में श्रमिक वर्ग का विरोध होता है, क्योंकि उसकी स्थिति दरिद्रता व अभाव से परिपूर्ण हो जाती है। शासन व शोषक वर्ग दमन का आश्रय लेता है, अग्नि भड़कती है और शोषित वर्ग, जो संख्या में अधिक होते हैं, सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली बदलने को कटिबद्ध हो जाते हैं। ताकि वह नए ढंग से अपनी आजीविका के साधन प्राप्त कर सके। इस प्रकार क्रांति होती है, जिससे उत्पादन प्रणाली को बदल दिया जाता है, जिसमें फिर नए सिरे से उत्पादन सम्बन्धों का विकास व उसके अनुरूप सामाजिक व्यवस्था का पुन: गठन होने लगता है।

उपर्युक्त व्याख्या से मार्क्स के आर्थिक निर्णयवाद की धारणा स्पष्ट हो जाती है। मार्क्स कहते हैं कि "नवीन उत्पादन शक्तियों को प्राप्त करने में लोग अपनी उत्पादन प्रणाली को बदल देते हैं व अपनी उत्पादन प्रणाली को बदलने में तथा जीविका को बदलने में वे अपने समस्त सम्बन्धों को बदल देते हैं। साथ ही चक्की का फल सामन्तवादी समाज था व भाप से चलने वाली चक्की का परिणाम औद्योगिक पूँजीवाद है।"[7]

इतिहास की व्याख्या भौतिकवाद, आर्थिक निर्णयवाद तथा वर्ग संघर्ष तीनों पर टिकी हुई है, मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित विचारों को निम्न तरह से स्पष्ट किया है–

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को स्पष्ट किया। मार्क्स का विचार है कि मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने का आधार उत्पादन व प्रौद्योगिकी है, जब कभी उत्पादन की प्रविधियों में परिवर्तन होता है तो हमारे आर्थिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जाता है। यह एक नई आर्थिक संरचना होती है और इसी की नींव पर सामाजिक, वैधानिक तथा राजनैतिक अधिसंरचना का निर्माण होता है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन का आधारभूत कारण प्रौद्योगिकी में होने वाला परिवर्तन है। मार्क्स द्वारा दिए गए परिवर्तन के इस सिद्धांत को निम्नांकित स्तरों के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है–

उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन (Change in the Mode of Production)

↓

उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन (Change in the Forces of Production)

↓

आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन (Change in the Relations of Production)

↓

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

इस प्रकार मार्क्स ने स्पष्ट किया है कि जब कभी भी उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होता है, तब उत्पादन की शक्तियों भी बदलने लगती है। उदाहरण के लिए जब उत्पादन के उद्देश्य उपभोग की आवश्यकताओं को पूरा करता है, तब उत्पादन की शक्तियों (अर्थात् मशीनें, उपकरण और स्वयंचलित यंत्र) बहुत अविकसित थी, लेकिन जब उत्पादन लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाने लगा, तो उत्पादन की शक्तियों में वृहत् परिवर्तन हो गया। इस प्रकार बड़ी–बड़ी मशीनों का आविष्कार हुआ, कारखानों की स्थापना हुई और एक ही स्थान पर हजारों की संख्या में श्रमिक साथ–साथ कार्य करने लगे।

उत्पादन के तरीकों और उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन होने से एक ऐसे वर्ग का निर्माण होता है, जिसका उत्पादन के सभी साधनों पर पूर्ण अधिकार होता है, जबकि दूसरा बड़ा वर्ग वह होता है, जिसे सभी प्रकार के आर्थिक लाभों से वंचित रखा जाता है। प्रथम वर्ग को हम पूँजीपति वर्ग कहते हैं व दूसरे वर्ग को सर्वहारा वर्ग कहा जाता है। पूँजीपति मजदूरों के श्रम को कम से कम मूल्य पर खरीद कर अधिकतम लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पूँजीपतियों को जो अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) प्राप्त होता है, वह वास्तव में श्रमिक वर्ग के श्रम का ही फल है।

Scanned with CamScanner

इसके परिणामस्वरूप इन दोनों वर्गों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। संघर्ष की यह प्रक्रिया एक नवीन आर्थिक संरचना का निर्माण करती है, जिसमें व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध एक नए सिरे से स्थापित होते हैं। स्वयं मार्क्स के शब्दों में "सामाजिक सम्बन्ध उत्पादन की शक्तियों में घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है, उत्पादन की नई शक्तियों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति पहले उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन करते हैं। इस प्रकार उत्पादन के तरीकों और आजीविका उपार्जित करने के तरीकों में परिवर्तन होने से उनके सामाजिक सम्बन्ध भी परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् सामाजिक सम्बन्धों की यह संरचना मनुष्य के सास्कृतिक, बौद्धिक, कलात्मक एवं आध्यात्मिक जीवन, धर्म, दर्शन तथा सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करती है। इस प्रकार स्वाभाविक है कि उत्पादन की विधियों में होने वाला कोई भी परिवर्तन, जो प्रौद्योगिक विकास पर आधारित है, हमारे आर्थिक सम्बन्धों को परिवर्तित करेगा और इन सम्बन्धों के फलस्वरूप सम्पूर्ण सामाजिक संरचना परिवर्तित हो जाएगी, क्योंकि सामाजिक संरचना और आर्थिक संरचना एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित है, यही सामाजिक परिवर्तन है।

आलोचना (Criticism)

(1) मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए मैकाइवर व पेज ने इस सिद्धांत को एक निर्धारणवादी सिद्धांत कहा है। इसका अर्थ यह है कि वे परिवर्तन के लिए एक कारण को महत्वपूर्ण मानते हैं और वो कारण आर्थिक कारण है। जबकि वे यह भूल जाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के लिए और भी महत्वपूर्ण कारण हैं जिसको मार्क्स ने नजरअंदाज किया है।

(2) मार्क्स ने यह कहा है कि आर्थिक कारणों से ही धार्मिक, सामाजिक एंव राजनैतिक परिवर्तन प्रभावित होते हैं, लेकिन कई बार ये स्वयं कारक के रूप में आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

(3) मैक्स वेबर ने भी मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि सामाजिक परिवर्तन के लिए आर्थिक कारण नहीं बल्कि धर्म महत्वपूर्ण है।

(4) मार्क्स ने वर्ग संघर्ष पर अधिक बल दिया है, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि समाज की नींव संघर्ष पर नहीं बल्कि सहयोग पर आधारित है।

(5) मार्क्स ने समाज में केवल दो वर्गों के अस्तित्व की कल्पना की है, जो व्यावहारिक नहीं है, समाज में तीसरा वर्ग मध्यम वर्ग भी है।

(6) मार्क्स ने सामाजिक संघर्ष के लिए केवल श्रमिक वर्ग को आधार माना है, जबकि मध्यम वर्ग का भी इसमें योगदान है।

सोरोकिन (Sorokin) ने मार्क्स की आलोचना निम्न आधारों पर की है-

(1) मार्क्स के सिद्धांत की सबसे बड़ी आलोचना सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारण को अन्तिम मान लेना है। कोई व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि मनुष्य की भोजन की मूल प्रवृति ही एक मात्र प्रेरक कारक है और यही सामाजिक परिवर्तन का आधार है। केवल आर्थिक कारण को सामाजिक जीवन का एकमात्र कारक किस प्रकार माना जा सकता है?

(2) मार्क्स के सिद्धांत की दूसरी आलोचना उनकी अभिव्यक्ति की अनिश्चितता है। उनका यह कहना कि आर्थिक कारक सामाजिक तथ्यों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अन्तिम है, गलत है। यदि मार्क्स के सिद्धांत में विश्वास कर लिया जाए, तब इसका अर्थ यह होगा कि युद्ध और शान्ति, निर्धनता और समृद्धता, दासता और स्वतन्त्रता, क्रांति और शक्ति एक ही आर्थिक कारक के परिणाम हैं। कोई भी विवेकशील व्यक्ति इन दशाओं को केवल आर्थिक कारकों का परिणाम मानने की भूल नहीं करेगा।

Scanned with CamScanner

(3) तीसरी आलोचना यह है कि इसमें अनेक शब्द जैसे-आर्थिक कारक, उत्पादन की शक्तियाँ तथा सम्बन्ध और प्रौद्योगिकी आदि की परिभाषा अधिक स्पष्ट नहीं है।

(4) उपयुक्त स्थिति के कारण प्रौद्योगिकी परिवर्तन से सम्बन्धित कारकों के क्रम में भी अनिश्चितता आ गई है।

(5) मार्क्स एंव एन्जिल्स का वर्ग-सघंर्ष का सिद्धान्त बहुत पुराना होने के साथ ही अनेक दोषों से युक्त है। यह कहना बिल्कुल भ्रान्तिजनक है कि "समाज का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है।" इसका तात्पर्य तो यह होगा कि जीवन में सहयोग का कोई महत्व है ही नहीं, जबकि वास्तव में यह प्रमाणित हो चुका है कि विभिन्न वर्गों में संघर्ष की अपेक्षा सहयोग की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती है। क्रोपोटकिन की पारस्परिक सहायता की धारणा सम्बन्धी अन्वेषण से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि मार्क्स के सिद्धांत में कोई ऐसी नयी बात नहीं है, क्योंकि ये बातें पहले के विद्वानों द्वारा भी कही जा चुकी हैं। जो कुछ मौलिक बात कही भी गयी है, व्यावहारिक जीवन और वैज्ञानिक सत्य से दूर है। सोरोकिन का तो यहाँ तक विश्वास है कि "मार्क्स और एन्जिल्स ने सामाजिक विज्ञान को प्रगतिशील बनाने के स्थान पर इसके विकास में अनेक बाधाएं उत्पन्न की है। इसके उपरान्त भी हमें यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि इस सिद्धान्त ने सामाजिक जीवन में प्रौद्योगिक के प्रभाव को बड़े तर्कपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है।"

Scanned with CamScanner